सामाजिक चेतना और प्रतिबद्धता के मुँहताज निरीह वृद्ध और अनाथ किशोर अपराधी

ए. सी. सिन्हा*

चिन्तन-सृजन के अप्रैल-जून अंक में शिवनारायण जी का लेख पढ़ा। लेख के अन्य पाठक बड़े भाई और पत्नी से चर्चा की। तदुपरान्त लगा कि मेरे पास व्यक्तिगत अनुभव और शोध सम्बन्धी कुछ ऐसी बातें हैं जिसे पाठकों तक पहुँचाना श्रेयकर होगा। करीब 25 वर्ष पहले की बात है। मैं संयुक्त राज्य अमेरिका के कैलिफोंनिया विश्वविद्यालय में वरीष्ठ अतिथि आचार्य के रूप में पढ़ा रहा था। एक दिन मेरे आश्रय दाता मित्र ने बताया कि उनके कोई ईसाई मिशनरी मित्र उस शाम उनसे मिलने आ रहे हैं। चूँकि उनके मित्र को भारतीय भोजन प्रिय था, क्यों नहीं हम एक साथ रात्रि-भोजन करें। अमेरिकी मित्र सपत्नि नियत समय पर आए। जब भोजन की बात आई, तो उन्होंने दुख के साथ भोजन करने में उस शाम असमर्थता जताई। क्योंकि उस रात हमारे 64 वर्षीय मेहमान अपने 94 वर्षीय पिता को वृद्धाश्रम से लेकर किसी होटल में डिनर कराने वाले थे।

उनके जाने के पश्चात मैंने स्वाभाविक रूप से अपने मित्र से उनके मिशनरी मित्र के विषय हो जिज्ञासा प्रकट की। मिशनरी मित्र एक मानवशास्त्री थे और तथाकथिक अविकसित समाज के विकास के पक्षधर थे। अपने बूढ़े पिता को वृद्धाश्राम में भरती कराकर वे स्वयं सपत्निक आदिम जातियों के उत्थान में व्यस्त रहते थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने फिलीपीन्स, मलाया और पूर्वोत्तर भारत में ईसाई मिशन के विभिन्न क्रिया-कलापों में भाग लिया था। मेरे मित्र ने बताया कि प्रायः अमेरीकन लोग अपने माता-पिता को वृद्धाश्रम में भरती कराकर उन्हें भूल जाते हैं। परन्तु यह मित्र साल में एक बार अपने पिता के जन्मदिन के अवसर को नहीं भूलता और उस दिन उन्हें बाहर किसी होटल में भोजन कराया करता है।

---

*प्रो. ए.सी. सिन्हा ICSSR नेशनल फेलो, नेहरू मेमोरियल म्युजियम तथा लाइब्रेरी–तीन मूर्ति हाउस, नई दिल्ली; भूतपूर्व आचार्य, समाजशास्त्र, उत्तर पूर्वी पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलाँग।

स्वाभाविक है कि उसके बाद वृद्धाश्रम की संस्था में मेरी जिज्ञासा बढ़ी। मैंने कुछ वृद्धाश्रमों का भ्रमण भी किया। प्रायः उन्हें निवासीय होटल कहना चाहिए, जहाँ आश्रय-भोजन, मनोरंजन और स्वास्थ्य सम्बन्धी सारी सुविधाएँ संस्थागत रूप में उपलब्ध रहती हैं। उनकी व्यवस्था और संचालन प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा संस्थागत रूप से की जाती है। अपने अमरीकन और यूरोपियन प्रवास के क्रम में वृद्ध जनों के विषय में कितने ही चिन्तनीय उदाहरण पाए। परन्तु मन-ही-मन मुझे लगा कि भारत की टूटती हुई संयुक्त परिवार की संस्था, बिखरती ग्रामीण एकता और विभिन्न प्रकार के सामाजिक विद्वेष की स्थिति में वृद्धाश्रम की परिकल्पना समीचीन होगी।

2

1990 के दशक के आरम्भ में भारत सरकार के लोक कल्याण मंत्रालय ने देश के वृद्धजनों की स्थिति का अध्ययन करने का निर्णय किया। उस कक्ष में अन्य संस्थाओं और विद्वानों के साथ-साथ पूर्वोत्तर भारत के वृद्धजनों की पारिवारिक सामाजिक और आर्थिक स्थिति का सर्वेक्षण करने का दायित्व मुझे सौंपा गया। हमारे अध्ययन से दो बातें मोटे तौर पर उजागर हुईं। पहली, प्रायः जनजातीय समाज में पारिवारिक टूट और बिखराव कम हुआ, क्योंकि उनके यहाँ प्रायः संयुक्त परिवार की संस्था की परिकल्पना नहीं थी। दूसरी, वृद्धजनों की समस्या पायः विकट नहीं हो पाती, क्योंकि सगोत्रीय परिवार असहाय वृद्धजनों के संरक्षक माने जाते हैं। यही कारण है कि उनके यहाँ कोई अनाथ बच्चा या आश्रयहीन बुजुर्ग नहीं पाया जाता और कोई भीख नहीं माँगता। आदिम समाज में बच्चे, बूढ़े, मर्द और औरत धनी और गरीब सभी एक साथ जीते हैं, या मरते हैं। फिर भी कुछ हृदय विदारक अपवाद मिले, जिनका वर्णन समीचीन होगा। पितृसत्ताक परिवारों के विपरीत मेघालय की मातृसत्ताक समुदायों में बूढ़े पुरुषों को स्थिति पितृसत्ताक हिन्दू परिवारों की निःसंतान विधवाओं के समान होती है। हमें कुछ ऐसे भी उदाहरण मिले कि शिक्षित और उच्च पदों से सेवानिवृत्त खाशी पुरुष वृद्धावस्था में अपने ही बनाए घरों से अपनी ही पत्नियों, बेटियों और उनके बच्चों द्वारा निष्कासित कर दिए गए। परम्परा के अनुसार उनकी जिन्दगी-भर की जमापूँजी बेटियों को मिलती है जो अपनी माँ, पति और बच्चों के साथ आराम से रहती हैं। परम्परा के अनुसार खाशी जनजाति के बेटे तो शादी के उपरान्त अपनी पत्नियों के यहाँ पनाह पाते हैं। हमने पाया कि ऐसी स्थिति में शिलाँग स्थित रोमन कैथलिक मिशन द्वारा स्थापित और संचालित वृद्धाश्रम 'मर्शी होम' में वर्षों तक के लिए स्थान रिक्त नहीं हो पाते।

शोध के सन्दर्भ में जब आश्रम संचालिका से उनके विगत अनुभव के विषय मैं जिज्ञासा की तो उन्होंने बताया कि आयरलैंड से वृद्धाश्रम संचालन का प्रशिक्षण लेने के बाद उनकी नागालैंड में बहाली हुई। नागालैंड के प्रवेश-द्वार माने जाने वाले नगर दीमापुर में कैथलिक मिशन ने वृद्धाश्रम की स्थापना की और उसके संचालन का प्रभार

आयरिश महिला को सुपुर्द कर दिया गया परन्तु वर्षों तक कोई वृद्ध आश्रम के दरवाजे पर नहीं आया, लाचार होकर उस स्थान पर अन्य क्रिया-कलाप होने लगे। स्मरणीय हो कि नागालैंड में अंग्रेजों ने अमेरिकन बैप्टीस्ट मिशन को ही ईसाई पंथ के विस्तार का लाईसेंस दे रखा था। आजादी के बाद ईसाई धर्म के अन्य पंथ नागालैंड आने लगे। रोमन कैथोलिक भी उन्हीं में से एक था। जब नागालैंड में वृद्धाश्रम की इमारत का इतर इस्तेमाल होने लगा, तो उसे बन्द करना पड़ा और उसके क्रिया-कलापों का मेघालय के नगर शिलाँग में स्थानांतरण कर दिया गया।

अपने शोध के सम्बन्ध में मैंने दीमापुर के वृद्धाश्रम के प्रश्न को कई वरिष्ठ नागा मिशनरियों और प्रबुद्ध जनों के साथ उठाया। मेरे नागा मित्र प्रश्न सुनकर प्रायः गम्भीर हो जाते थे। फिर उन्होंने एक स्वर से उत्तर दिया : "न तो ऐसा विचार किसी वृद्ध या वृद्धा के मन में आएगा, और न तो कोई नागा कुल समूह या गोत्र ऐसा होने देगा।" किसी भी वृद्ध नागा की उपेक्षा, तिरस्कार, अनादर, शारीरिक या मानसिक आघात पूरे कुल की प्रतिष्ठा का प्रश्न होता है। निःसंतान बुजुर्ग पूरे कुल समूह के सदस्य के रूप में भरण-पोषण और प्रतिष्ठा के हकदार माने जाते हैं। और उनके देखभाल का दायित्व पूरे कुल समूह का माना जाता है। अगर कोई बुजुर्ग किसी अन्य गाँव या कुल में शरण पाता है तो इससे उसका कुल अपना अपमान मानता है। यहाँ तक कि धर्म-परिवर्तन के पश्चात् भी इस पारम्परिक सोच में बदलाव नहीं आया है। अगर कोई नागा दूर-दराज स्थान पर मरता है और उसे वहीं दफना दिया जाता है तो कालान्तर में उसके परिवार और कुल के सदस्य मृत व्यक्ति की अस्थियों को उसके गाँव स्थित कब्रगाह में लाकर श्रद्धापूर्वक दफनाते हैं। कुल समूह सामूहिक रूप से अपने पूर्वजों की अस्थियों का संरक्षक माना जाता है। सभी नागा मृत व्यक्ति की अस्थि-पुनरागमन की प्रक्रिया में श्रद्धापूर्वक सहयोग करते हैं।

3

आज से करीब साठ-पैंसठ वर्ष पहले जब मैं अपने गाँव की पाठशाला में पढ़ता था, तो गाँव और पड़ोस के सभी गाँव सामाजिक रूप से संगठित थे। ग्रामीणों का मुख्य उद्यम खेती और पशुपालन था। प्रायः अधिकतर परिवार संयुक्त परिवार थे, जिनमें चार पीढ़ियाँ तक प्रायः एक साथ रहती और भोजन करती थीं। व्यवस्था सामन्ती थी, परन्तु अत्याचार प्रायः नहीं होते थे। 'पवनी' और 'यजमानी' प्रथा कृषि के इर्द-गिर्द घूमती थी। पुरोहित, धोबी, नाई, बढ़ई, लुहार, कुम्हार, बुनकर आदि जातियाँ भूस्वामी परिवर्ग के पवनी कहलाते थे और भूस्वामी उनका यजमान। पवनी कहे जाने वाले परिवार साल-भर कृषक परिवार को अपनी सेवाएँ उपलब्ध कराते थे और सेवा के दिन भोजन पाते थे। पर्व-त्यौहारों और शादी-ब्याह के अवसर पर उन्हें वस्त्र और भोजन दिया जाता था। फसल की कटाई के समय परिवार के मुखिया की सहमति से पवनी

सबसे अच्छी फसल की एक इकाई काटकर अपने घर ले जाते थे। इस प्रकार फसल अच्छी होने पर पूरा गाँव खुशहाल होता था और फसल बिगड़ने पर पूरा गाँव तबाही भोगता था। फसल से सम्बन्धित कुछ ऐसे त्यौहार थे, जिनमें हिन्दू-मुसलमान और सभी जातियाँ शामिल होती थीं।

प्रत्येक परिवार का एक मुखिया होता था जो आमदनी-खर्च, शादी-ब्याह, नाते-रिश्ते, खेत-खलिहान, पेड़-पौधों, पशुओं आदि सभी विषयों पर नजर रखता था। खेती सुचारु रूप से चले और उसमें यथा-सामर्थ्य सभी सदस्य सहयोग करें—यह दायित्व मुखिया का होता था। अक्षम, विधवा, अनाथ, बीमार या अन्य कमजोर सदस्यों की आवश्यकता को मुखिया पूरा करता था। संयुक्त परिवार में कोई भी बच्चा अनाथ नहीं होता था। परिवार का मुखिया गाँव या गाँव से बाहर रिश्तेदारी में परिवार का प्रतिनिधित्व करता था। ऊँच-नीच भूस्वामी-भूमिहीन, यजमान और पवनी सभी परिवारों की अपनी प्रतिष्ठा होती थी; गाँव की समस्याओं पर विचार करने के लिए गाँव के विभिन्न जातियों के प्रतिष्ठित बुजुर्गों की परम्परागत पंचायत बैठती थी। पंचायत का निर्णय सर्वसम्मति से और सर्वमान्य होता था। यहाँ तक की स्वतन्त्रता के बाद जब औपचारिक ग्राम पंचायत का प्रादुर्भाव हुआ, तो दो दशक तक उपर्युक्त बुजुर्ग ही निर्विरोध पंच चुने जाते रहे।

स्वाभाविक है देश के आजाद होने के बाद परिवर्तन की लहर तेज हो गई। धीरे-धीरे गाँव का युवा-वर्ग शिक्षा पाकर, रोजी की तलाश में शहरों की तरफ मुड़ने लगा। आरम्भ में ऐसे व्यक्ति प्रायः अपनी पत्नियों और बच्चों को गाँव में छोड़ जाते थे और अपनी आय का अधिकतर भाग परिवार के मुखिया को मनीऑर्डर कर देते थे। कालांतर में ऐसे परिवार शहरों में स्थानांतरित होने लगे। फिर भी घर के मुखिया को मनीऑर्डर पहुँचता रहा। धीरे-धीरे उसकी मात्रा और अनवरतता कम होने लगी। दादा, पिता, चाचा, या बड़े भाई के परिवार के मुखिया के स्थान के रिक्त होते ही ऐसे परिवारों में शहरों से मनीऑर्डर आना प्रायः रुक जाता। गाँव में खेती की बदलती स्थिति परम्परागत-मानसून प्रद कृषि के स्थान पर उन्नत बीज और रासायनिक खाद के लिए रुपयों की आवश्यकता थी। फलस्वरूप वैसे खेतिहर परिवार जिन्हें बाहर से पैसों की आमदनी थी खेती में आगे निकल गए। साथ-ही-साथ टूटता हुआ सामन्ती परिवार गाँव की जमीन बेच शहर में बसने लगा और शहरी मध्यम वर्ग के भीड़ में खोने लगा। प्रायः दो दशक बाद गाँव के ग्रामीण परिवारों में खान-पान, पहनावा, तड़क-भड़क बढ़ने लगी। जैसे-जैसे परिवार में बाहर से कैश आता रहा, खेती करने वाले गौण होने लगे। घर के मुखिया को भी परिवार के सभी सदस्यों पर समान नजर रखते हुए भी नौकरी पेशा इकाइयों को तरजिह देना पड़ता। फलस्वरूप परिवार के मुखिया की खुदमुख्तारी और इज्जत घटने लगी। जैसे ही मुखिया पर पक्षपात के स्वर उठने लगे, वैसे ही संयुक्त परिवार टूटने के कगार पर आ गया। यह प्रक्रिया बढ़ती गई और संयुक्त परिवार टूटते चले गए। परिवार के मुखिया की प्रतिष्ठा का परिवार

या गाँव में कम होने का मतलब था गाँव की सामूहिक शक्ति पर चोट। फिर तो गाँव की सामूहिक शक्ति विखरने लगी। फिर गाँव पंचायत चुनी जाने लगी और चुनाव में जात-पाँत, ऊँच-नीच-जन्य गुटबाजियाँ होने लगीं। आज गाँवों के संयुक्त परिवार प्रायः टूट चुके हैं और जो अस्तित्व में हैं वे अनुकरणीय नहीं रह गए हैं।

प्रायः देखने में गाँव का जीवन-स्तर पहले से अच्छा है। प्रायः सभी अच्छा भोजन करते हैं; अच्छे वस्त्र पहनते-हैं; अच्छे घरों में रहते हैं और बहुतों के पास पैसों की आमदनी है। फिर भी कोई किसी की नहीं सुनता। गाँव में आज बड़े-बूढ़ों अनुभवी लोगों की कोई नहीं सुनता। गाँव का नैतिक नियंत्रण खत्म-सा हो चला है। बूढ़े, बीमार, अपंग, विधवा और अनाथ की अवस्था अच्छी नहीं है। गाँव पतन की राह पर बढ़ रहा है। अब गाँवों में भी वे समस्याएँ पाई जाने लगी हैं, जिन्हें हम शहरों से जोड़कर देखते रहे हैं। व्यभिचार जातीय संघर्ष, हिंसा, मार-पीट, चोरी-डकैती बढ़ गई है। फलस्वरूप शारीरिक और सामाजिक रूप से लाचार और कमजोर ग्रामीण गाँवों में बोझ बनने लगे थे; मैथिलीशरण गुप्त जी का "अहा! ग्राम जीवन भी क्या है? थोड़े में निर्वाह यहाँ है। ऐसी सुविधा और कहाँ है?" इतिहास बनता जा रहा है।

4

इस सन्दर्भ में समाज से जुड़ी एक दूसरी विकराल समस्या की तरफ मैं पाठकों का ध्यान दिलाना चाहूँगा। आए दिन संचार साधन बाल-अपराध और बाल-अनाचार के समाचारों से भरे पड़े रहते हैं और लगता है इस बढ़ते हुए सामाजिक कोढ़ की तरफ हम पर्याप्त ध्यान नहीं दे पा रहे हैं। मुझे मालूम है कि 'प्रयास' और 'बचपन' ऐसी कुछ स्वयंसेवी संस्थाएँ हैं, जो अत्यंत ही सराहनीय काम कर रही हैं। परन्तु बहुत कुछ करना बाकी है। भारत सरकार के लोक कल्याण मंत्रालय ने अनाथ और किशोर अपराध से सम्बन्धित व्यवस्था के अनुसार राज्य और जनपदों के स्तर पर किशोर अपराध परिषद् (Juvenie Justice Board) की व्यवस्था की है। इस संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक राज्य और जनपद में स्थानीय न्यायाधीश की अध्यक्षता में न्यायविद्, पुलिस, स्वयंसेवी संस्थाओं और गणमान्य नागरिकों की परिषद् के गठन की व्यवस्था है, ताकि अनाथ, असहाय, किशोर अपराधियों के आश्रय, प्रशिक्षण और पुनर्वास की व्यवस्था की जा सके।

आज से करीब पच्चीस वर्ष पहले पटना स्थित स्वयंसेवी संस्था, 'बचपन' के संचालक-अधिवक्ता सनत कुमार सिन्हा ने बिहार सरकार पर एक याचिका दायर की कि उसने अनाथ और किशोर अपराध से सम्बन्धित व्यवस्थाओं के अनुसार परिषदों का गठन न कर अपने संवैधानिक दायित्व का पालन नहीं किया। याचिकाकर्ता ने न्यायालय से माँग की कि वह सरकार को अपने कानून का पालन करने के लिए बाध्य करे। कोर्ट ने फैसला याचिकाकर्ता के पक्ष में दिया, फिर भी कोई कार्यवाही नहीं हुई। अन्त में उन्होंने यह प्रश्न संसद में उठवाया। फलस्वरूप तत्कालीन केन्द्रीय लोक

कल्याण मंत्री श्री सीताराम केशरी ने उत्तर दिया कि वर्तमान सम्बन्धित प्रावधानों में खामियाँ सुझाई गई हैं। इस कारण सरकार पूरे देश में इस विषय पर सर्वेक्षण (Survey) करा रही है। सर्वेक्षण से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर इस विषय में सरकार सदन को विश्वास में लेगी।

इत्तेफाक की बात थी कि उन दिनों मैं लोक कल्याण मंत्रालय के केन्द्रीय शोध परामर्श दात्री परिषद् का सदस्य था। अनाथ बच्चों और किशोर अपराधियों के किन्हीं आँकड़ों के आधार पर सभी राज्यों की शृंखलाबद्ध सूची बनाई गई थी। इस सूची में महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक आदि ऊपर थे और बिहार, उड़ीसा और असम सबसे निचले पायदान पर थे। लोककल्याण मंत्रालय ने उपर्युक्त सर्वेक्षण के आधार पर पूरे देश के शोध संस्थाओं से प्रस्ताव मँगाए और गुण-दोष के आधार पर उनका आवंटन कर दिया गया। कई राज्यों के सर्वेक्षण आरम्भ भी हो गए, परन्तु बिहार और उड़ीसा से कोई प्रस्ताव नहीं आया। मंत्रालय ने उन राज्यों के शोध संस्थाओं से सीधे सम्पर्क कर प्रस्ताव मँगाने का प्रयास किया, परन्तु बिहार और उड़ीसा के सर्वेक्षण के लिए कोई आगे नहीं आया।

नियत समय पर जब शोध परामर्श परिषद् की बैठक हुई तो स्वाभाविक रूप से इस बात की चर्चा हुई। कुछ विचार विमर्श के बाद तत्कालीन कल्याण सचिव ने परिषद् की तरफ से साग्रह प्रस्ताव किया कि बिहार और उड़ीसा के लिए अनाथालय और किशोर अपराध सम्बन्धी सर्वेक्षण का काम मैं सम्पन्न करूँ! मैंने दो कारणवश इस प्रस्ताव का विरोध किया। पहला, शोध परामर्श परिषद् के सदस्य होने के नाते मैं इस आवंटन को अनैतिक मानता था। दूसरा, मेरा कार्यक्षेत्र उत्तर-पूर्वी पहाड़ी विश्वविद्यालय, बिहार और उड़ीसा से दूर है। व्यक्तिगत और कार्यगत असुविधाओं के अलावा, आवागमन का व्यय बढ़ जाता। परन्तु मेरे विरोध के बावजूद परिषद् ने किसी अन्य विकल्प के अभाव में सर्वेक्षण की जिम्मेवारी मुझे सौंप दी।

सर्वेक्षण के सन्दर्भ में जो सूचनाएँ और तथ्य सामने आए वे कितने घिनौने कुत्सित, अपर्याप्त होंगे, इसकी मैंने कल्पना तक नहीं की थी। सरकारी अधिकारी-नौकरशाही न्याय व्यवस्था, आरक्षी विभाग आदि—कितने अकर्मण्य और हृदयहीन हो सकते हैं, अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। बिहार में इस सम्बन्ध में कोई संस्थागत अंग काम नहीं कर रहा था। एक सप्ताह चक्कर मारने के बाद सम्बन्धित अधिकारी ने रहस्य प्रकट किया कि राज्य सरकार ने अनाथ-किशोर अपराध न्यायिक परिषद् का गठन नहीं किया था। इस सम्बन्ध में राज्य कल्याण विभाग ने उचित पहल नहीं की। हाई कोर्ट ने भी इसे नजरअंदाज कर दिया, स्वाभाविक था ऐसी स्थिति में जनपदीय स्तर के परामर्शदात्री परिषदों का गठन नहीं हुआ। नियम के विपरीत प्रत्येक जनपद में अनाथाश्रम, Remand Home या पुनर्वास गृह नहीं बनाए गए, जो पुरानी संस्थाएँ थीं, उनकी सुविधा, रख-रखाव, पर्यवेक्षण का अभाव था। असहाय, अनाथ, लाचार शरणागतों के भरण-पोषण के लिए दैनिक भत्ता सात रुपये

प्रतिदिन तय था; जिसमें भोजन, साबुन, तेल, दवाएँ सभी कुछ सम्मिलित था। आश्रम के मुलाजिम उसका बड़ा भाग हड़प जाते थे। कई अनाथाश्रम और पुनर्वास गृह के मुलाजिम अपने शरणागत अनाथ बच्चों से अनैतिक और व्यभिचारी कार्य कराते पकड़े गए। सामाजिक पतन की जीती-जागती तस्वीर तब सामने आई, जब सुधार घरों के मुक्त लड़के-लड़कियाँ अपने माँ-बाप के साथ जाने की अपेक्षा अनाथालय का नारकीय आधे पेट खाकर जीवन जीने को श्रेयष्कर समझते थे। जिज्ञासा करने पर पता लगा कि उपर्युक्त बच्चों के पतन के कारण उनके अपने माँ-बाप ही थे।

यह बात किसी से छिपी नहीं है कि बिहार में बच्चों के स्वस्थ और समान विकास के लिए मूल-भूत सुविधाओं का अभाव है। लगता है इस विषय पर किसी का कभी ध्यान ही नहीं गया। बिहार के बच्चों के स्वस्थ विकास के लिए क्या सुविधाएँ उपलब्ध हैं? बाल-उद्यान? बाल-वाटिकाएँ? बाल-क्रीड़ाघर? बच्चों के सुरक्षित खेलने का स्थान? उनके तैरने के तरणताल? प्राथमिक विद्यालयों में पाखाने-पेशाब करने की सहूलियतें और पीने के पानी की व्यवस्था? कभी कुछ पहल होती भी है तो आरम्भ करके अधूरा काम छोड़ दिया जाता है। यह एक सार्वभौम तथ्य है कि आज के बच्चे ही कल के भविष्य हैं। अगर आज के बच्चों के रख-रखाव पर हम प्रभावकारी नियोजन नहीं कर पा रहे हैं और उनके सामान्य स्वाभाविक विकास के लिए कम-से-कम सुविधा नहीं जुटा पा रहे हैं तो कल के बिहार की किस प्रकार के भविष्य की अपेक्षा करते हैं?

5

हमारे बुजुर्ग हमारी परम्परा, विरासत और इतिहास की कड़ी हैं। उन्होंने यथायोग्य समाज के विकास में अपना योगदान किया है, तभी तो आज की युवा पीढ़ी आत्म-विश्वास और स्वाभिमान के साथ नए सम्पन्न राष्ट्र के निर्माण में संलग्न है। अगर आज बुजुर्ग लाचार हैं, बीमार हैं, साधनहीन और अनाश्रित हैं, तो क्या समाज और सरकार का दायित्व नहीं बनता कि उनकी समस्याओं का संस्थागत निदान करे? अगर परिवार अक्षम है, ऐसे लोगों का भरण-पोषण या भार वहन करने में, तो क्या समाज और सरकार भी कुछ नहीं कर पाएगी? इसी प्रकार अनाथ किशोर अपराधियों की जटिल स्थिति का निराकरण सम्बन्धित सुविधाओं का स्वस्थ संचालन और सम्पादन करके ही किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में राजनेता, न्यायाधीश, न्यायविद, पुलिस और स्वयंसेवी संस्थाएँ सबों को सामूहिक सकरात्मक पहल करनी होगी। अगर हम में आत्म-सम्मान और आत्म-गौरव है, तो फिर अपने बुजुर्गों और असहाय बच्चों को अपने साथ लें और उन्हें समाज में आजादी से जीने का हक दें। प्रश्न सामाजिक चेतना और प्रतिवद्धता का है।